INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 16 | ISSUE - 5 | JUNE – 2026

रत्नकुमार सांभरिया के कथा साहित्य में राजनीतिक चेतना का अध्ययन

आरती साकेत
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. निर्मला साहू
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
श्री दयाराम शिक्षा महाविद्यालय, सेमरिया, जिला रीवा (म.प्र.)

सारांश –

राजनीतिक चेतना किसी भी समाज के नागरिकों में अधिकारों, कर्तव्यों तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने वाली वह वैचारिक शक्ति है, जो सामाजिक संरचना को अधिक न्यायपूर्ण और समतामूलक बनाने की दिशा में प्रेरित करती है। यह चेतना केवल राजनीतिक संस्थाओं या शासन–व्यवस्था तक सीमित नहीं होती, बल्कि समाज के प्रत्येक स्तर पर व्याप्त होकर व्यक्ति को उसके अधिकारों, स्वतंत्रताओं तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति सजग बनाती है। भारतीय संदर्भ में राजनीतिक चेतना का विकास विशेष रूप से संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों, लोकतांत्रिक मूल्यों तथा सामाजिक न्याय की अवधारणाओं के साथ जुड़ा हुआ है। शैक्षणिक अधिकार राजनीतिक चेतना का एक महत्वपूर्ण आधार है, क्योंकि शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक हो सकता है। भारतीय संविधान ने शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित कर सामाजिक समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है। शिक्षा न केवल व्यक्ति के बौद्धिक विकास का साधन है, बल्कि यह उसे सामाजिक–राजनीतिक संरचनाओं को समझने तथा उनमें सक्रिय भागीदारी करने की क्षमता भी प्रदान करती है। तथापि, सामाजिक और आर्थिक असमानताओं के कारण शिक्षा के अवसरों में अभी भी विषमता विद्यमान है, जिससे राजनीतिक चेतना का समान विकास बाधित होता है।

मुख्य शब्द – राजनीतिक चेतना, समाज, नागरिकों में अधिकार, कर्तव्य, लोकतांत्रिक मूल्य, न्याय एवं समता।

प्रस्तावना –

समता राजनीतिक चेतना का केंद्रीय तत्व है, जो यह सुनिश्चित करता है कि समाज में सभी व्यक्तियों को समान अवसर, समान अधिकार और समान सम्मान प्राप्त हो। लोकतांत्रिक व्यवस्था में समता का सिद्धांत जाति, धर्म, लिंग, वर्ग एवं भाषा आधारित भेदभाव को अस्वीकार करता है तथा एक न्यायपूर्ण सामाजिक संरचना की स्थापना की दिशा में कार्य करता है। साहित्य एवं सामाजिक चिंतन में समता की अवधारणा ने सदैव महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है, क्योंकि यह सामाजिक परिवर्तन की आधारभूमि तैयार करती है।

बंधुत्व लोकतांत्रिक समाज की वह नैतिक और सामाजिक भावना है, जो व्यक्तियों एवं समुदायों के बीच सहयोग, सह–अस्तित्व तथा आपसी सम्मान को विकसित करती है। भारतीय संविधान में बंधुत्व को एक मूल मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसका उद्देश्य सामाजिक विभाजन और वैमनस्य को समाप्त कर राष्ट्रीय

एकता को सुदृढ़ करना है। बंधुत्व की भावना सामाजिक संबंधों को मानवीय बनाती है और समाज में समरसता तथा सौहार्द की स्थापना करती है।

न्याय राजनीतिक चेतना का अंतिम एवं सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के बिना किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की कल्पना अधूरी है। न्याय की अवधारणा यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके अधिकारों का उचित और निष्पक्ष वितरण प्राप्त हो तथा किसी भी प्रकार का शोषण या अन्याय न हो। भारतीय लोकतंत्र में न्याय का उद्देश्य केवल कानूनी व्यवस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक समानता और मानव गरिमा की स्थापना से भी जुड़ा हुआ है।

विश्लेषण –

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में शैक्षणिक अधिकार का प्रश्न दलित चेतना के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयामों में से एक है। उनके साहित्य में शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन अथवा रोजगार प्राप्ति का माध्यम नहीं माना गया है, बल्कि उसे सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान, समान अवसर तथा मानवीय गरिमा की स्थापना के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही जातिगत असमानताओं ने दलित समुदाय को शिक्षा से दूर रखा, जिसके कारण वे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में पिछड़े रहे। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने शिक्षा को दलित मुक्ति का सबसे प्रभावी साधन मानते हुए "शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो" का आह्वान किया था। सांभरिया का कथा–साहित्य इसी अम्बेडकरवादी विचारधारा को रचनात्मक रूप में अभिव्यक्त करता है।[1]

रत्नकुमार सांभरिया की प्रसिद्ध कहानी 'फुलवा' शैक्षणिक अधिकार की महत्ता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। कहानी की नायिका फुलवा आर्थिक रूप से अत्यंत कमजोर होने के बावजूद अपने पुत्र राधामोहन की शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देती है। समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव और आर्थिक अभावों के बीच भी वह अपने पुत्र के हाथ से पुस्तक नहीं छूटने देती। फुलवा का यह संघर्ष इस तथ्य को रेखांकित करता है कि शिक्षा दलित समाज के लिए केवल अधिकार नहीं, बल्कि अस्तित्व और सम्मान का प्रश्न है। राधामोहन की शैक्षणिक उपलब्धि और उसके बाद प्रशासनिक सेवा में चयन यह सिद्ध करता है कि शिक्षा सामाजिक गतिशीलता और समानता की स्थापना का सशक्त माध्यम है।[2]

'एयरगन का घोड़ा' कहानी में शैक्षणिक अधिकार को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से जोड़कर देखा गया है। कहानी का पात्र भूरजी राम मानू जातिगत अपमान और सामंती शोषण का सामना करता है, किंतु उसके काका शिक्षा के महत्व को समझते हुए उसे विद्यालय भेजते हैं। शिक्षा के परिणामस्वरूप भूरजी जेल अधीक्षक जैसे उच्च पद तक पहुँचता है। यह कहानी स्पष्ट करती है कि शिक्षा व्यक्ति को केवल ज्ञान नहीं देती, बल्कि उसे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस और आत्मविश्वास भी प्रदान करती है। सांभरिया इस कथा के माध्यम से यह संदेश देते हैं कि शैक्षणिक अधिकार का वास्तविक अर्थ अवसरों की समानता और सामाजिक सम्मान की प्राप्ति है।[3]

रत्नकुमार सांभरिया की चर्चित कहानी 'बिपर सुंदर एक कीने' में शिक्षा को सामाजिक रूढ़ियों और जातिगत बंधनों को तोड़ने वाले माध्यम के रूप में चित्रित किया गया है। श्यामूलाल सामाजिक बहिष्कार का जोखिम उठाकर अपने पुत्र दीदार की शिक्षा जारी रखता है। आर्थिक कठिनाइयों और सामाजिक दबावों के बावजूद वह यह विश्वास बनाए रखता है कि शिक्षा ही उसके परिवार को सम्मानजनक जीवन प्रदान कर सकती है। परिणामस्वरूप दीदार राज्य प्रशासनिक सेवा में चयनित होकर डी.वाई.एस.पी. बनता है। कहानी यह स्पष्ट करती है कि शैक्षणिक अधिकार केवल विद्यालय में प्रवेश तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना, आत्मविश्वास और भविष्य निर्माण से भी जुड़ा हुआ है।[4]

'धूल' कहानी में शैक्षणिक अधिकार का एक और महत्वपूर्ण पक्ष सामने आता है। हुलसीराम अपने छोटे भाई धूलसिंह को शिक्षित करने के लिए अनेक त्याग करता है। वह स्वयं कठिन परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करते हुए भी शिक्षा को प्राथमिकता देता है। धूलसिंह की प्रशासनिक सेवा में सफलता इस बात का प्रमाण है कि शिक्षा दलित समुदाय के लिए सामाजिक उन्नयन और आत्मनिर्भरता का प्रभावी साधन है। कहानी यह भी दर्शाती है कि परिवार और समुदाय का सहयोग शैक्षणिक अधिकार को व्यवहारिक रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[5]

'बात' कहानी में शैक्षणिक अधिकार को दलित स्त्री चेतना के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। सूरती अपने पति की मृत्यु के पश्चात् आर्थिक संकटों से घिरी होने के बावजूद अपने पुत्र राधू की शिक्षा को बाधित नहीं होने देती। उसके लिए शिक्षा भविष्य के सुरक्षित और सम्मानजनक जीवन की आशा है। यह कहानी इस तथ्य को उजागर करती है कि दलित स्त्रियाँ शिक्षा के महत्व को समझते हुए अगली पीढ़ी के जीवन को बेहतर बनाने के लिए संघर्ष करती हैं। इस प्रकार सांभरिया शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ पारिवारिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का साधन भी मानते हैं।[6]

सांभरिया के कथा–साहित्य में शैक्षणिक अधिकार के समक्ष उपस्थित बाधाओं का भी यथार्थपरक चित्रण मिलता है। आर्थिक अभाव, जातिगत पूर्वाग्रह, सामाजिक उपेक्षा तथा संस्थागत भेदभाव जैसे कारक दलित विद्यार्थियों की शैक्षणिक प्रगति में अवरोध उत्पन्न करते हैं। अनेक कहानियों में विद्यालय और समाज के बीच मौजूद असमान संबंधों को चित्रित किया गया है, जहाँ दलित विद्यार्थियों को समान अवसर प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त संघर्ष करना पड़ता है। लेखक यह संकेत करते हैं कि केवल संवैधानिक प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन भी आवश्यक है।[7]

रत्नकुमार सांभरिया का कथा–साहित्य यह भी स्पष्ट करता है कि शैक्षणिक अधिकार लोकतांत्रिक समाज की आधारभूत आवश्यकता है। शिक्षा व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है, उसमें आत्मसम्मान और सामाजिक चेतना का विकास करती है तथा उसे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की क्षमता प्रदान करती है। उनके साहित्य में शिक्षित पात्र सामाजिक परिवर्तन के वाहक के रूप में उभरते हैं, जो न केवल स्वयं आगे बढ़ते हैं, बल्कि अपने समुदाय को भी प्रगति की दिशा में प्रेरित करते हैं। यह दृष्टि भारतीय संविधान की समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं के अनुरूप है।[8]

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में शैक्षणिक अधिकार दलित चेतना का मूलाधार है। उनके पात्र शिक्षा के माध्यम से सामाजिक बंधनों को चुनौती देते हैं, आत्मसम्मान अर्जित करते हैं और नई सामाजिक पहचान निर्मित करते हैं। सांभरिया का साहित्य यह प्रतिपादित करता है कि शिक्षा केवल व्यक्तिगत उन्नति का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, समानता और न्याय की स्थापना का प्रभावी माध्यम है। इस दृष्टि से उनका कथा–साहित्य भारतीय समाज में शैक्षणिक अधिकार की चुनौतियों, संघर्षों और संभावनाओं का महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज सिद्ध होता है।

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में समता की अवधारणा दलित चेतना के केंद्रीय तत्व के रूप में प्रतिष्ठित है। उनके साहित्य में समता केवल एक नैतिक आदर्श या संवैधानिक सिद्धांत नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, मानवीय गरिमा और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना का आधार है। भारतीय समाज की जाति–आधारित संरचना ने सदियों तक दलित समुदाय को सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर असमानता और वंचना का सामना करने के लिए बाध्य किया। इस ऐतिहासिक अन्याय के विरुद्ध सांभरिया का कथा–साहित्य प्रतिरोध का स्वर बनकर उभरता है और समतामूलक समाज की स्थापना की आकांक्षा को अभिव्यक्त करता है। उनके पात्र सामाजिक विषमताओं से संघर्ष करते हुए समान अधिकार, सम्मान और अवसर प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर दिखाई देते हैं।[9]

रत्नकुमार सांभरिया की प्रसिद्ध कहानी 'फुलवा' समता की चेतना का अत्यंत प्रभावशाली उदाहरण प्रस्तुत करती है। कहानी की नायिका फुलवा सामाजिक उपेक्षा और आर्थिक अभावों के बावजूद अपने पुत्र राधामोहन को शिक्षित करने का संकल्प लेती है। उसकी दृष्टि में शिक्षा सामाजिक समानता प्राप्त करने का सबसे प्रभावी माध्यम है। राधामोहन के पुलिस अधीक्षक (एस.पी.) बनने के बाद समाज का उसके प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है। जो लोग पहले उसकी जाति के आधार पर उसे तिरस्कृत करते थे, वही बाद में सम्मान देने लगते हैं। यह परिवर्तन दर्शाता है कि शिक्षा और उपलब्धि के माध्यम से सामाजिक असमानताओं को चुनौती दी जा सकती है। कहानी समता के उस विचार को स्थापित करती है जिसमें व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसकी योग्यता और व्यक्तित्व से किया जाता है।[10]

'एयरगन का घोड़ा' कहानी में समता का प्रश्न जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक न्याय के संदर्भ में सामने आता है। भूरजी राम मानू का जीवन इस बात का उदाहरण है कि सामाजिक असमानता किस प्रकार व्यक्ति के विकास को बाधित करती है। जमींदार परिवार द्वारा उसके साथ किया गया व्यवहार भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत विषमता को उजागर करता है। किंतु शिक्षा प्राप्त कर जेल अधीक्षक बनने के बाद भूरजी

सामाजिक सम्मान अर्जित करता है। यह परिवर्तन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि समता केवल राजनीतिक अधिकारों से नहीं, बल्कि शिक्षा और अवसरों की समान उपलब्धता से संभव होती है। सांभरिया इस कहानी के माध्यम से सामाजिक न्याय और समानता की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।[11]

'बिपर सुंदर एक कीने' कहानी समता की अवधारणा को सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर विस्तृत करती है। कहानी में श्यामूलाल और उसके पुत्र दीदार के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि सामाजिक बहिष्कार और जातिगत पूर्वाग्रह समता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। श्यामूलाल अपने पुत्र की शिक्षा के लिए सामाजिक अपमान सहता है, किंतु अंततः दीदार की प्रशासनिक सफलता उन रूढ़ मान्यताओं को चुनौती देती है, जिनके आधार पर समाज व्यक्ति का मूल्यांकन करता है। जब उच्च जाति के लोग उसके परिवार से संबंध स्थापित करने के लिए आगे आते हैं, तब यह स्थिति सामाजिक संबंधों में आए परिवर्तन और समता की दिशा में बढ़ते कदमों का संकेत देती है।[12]

रत्नकुमार सांभरिया की 'धूल' कहानी में समता का संबंध अवसरों की समानता से जुड़ा हुआ है। हुलसीराम अपने छोटे भाई धूलसिंह को शिक्षित करने के लिए अनेक त्याग करता है। सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद धूलसिंह प्रशासनिक सेवा में चयनित होकर यह सिद्ध करता है कि यदि समान अवसर उपलब्ध हों, तो दलित समुदाय भी समाज के उच्चतम पदों तक पहुँच सकता है। कहानी यह स्पष्ट करती है कि समता का वास्तविक अर्थ केवल अधिकारों की घोषणा नहीं, बल्कि उन अधिकारों तक पहुँच सुनिश्चित करना है।[13]

'बात' कहानी में समता का संबंध दलित स्त्री चेतना से जुड़ता है। सूरती अपने पुत्र की शिक्षा के लिए संघर्ष करती है और यह विश्वास बनाए रखती है कि शिक्षा ही उसके परिवार को सम्मानजनक जीवन प्रदान कर सकती है। यहाँ समता केवल जातिगत असमानता तक सीमित नहीं रहती, बल्कि लिंग आधारित विषमताओं को भी अपने दायरे में समाहित करती है। सांभरिया इस कहानी के माध्यम से यह संकेत देते हैं कि समतामूलक समाज की स्थापना तब तक संभव नहीं है, जब तक स्त्रियों और वंचित समुदायों को समान अवसर प्राप्त नहीं होते।[14]

रत्नकुमार सांभरिया का कथा–साहित्य यह भी स्पष्ट करता है कि समता का प्रश्न केवल सामाजिक संबंधों तक सीमित नहीं है, बल्कि आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। भूमिहीनता, बेरोजगारी, संसाधनों की कमी तथा सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व का अभाव सामाजिक असमानता को और अधिक गहरा करते हैं। उनके पात्र इन परिस्थितियों का सामना करते हुए आत्मसम्मान और अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हैं। यह संघर्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर की समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की अवधारणा से प्रेरित दिखाई देता है। सांभरिया के साहित्य में समता का अर्थ केवल सामाजिक स्तर पर समान व्यवहार नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान अवसर और सम्मान की उपलब्धता है।[15]

सांभरिया की कहानियों में समता की स्थापना शिक्षा, संगठन और संघर्ष के माध्यम से संभव होती दिखाई देती है। उनके पात्र अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते हैं तथा सामाजिक चेतना के माध्यम से परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह दृष्टि लोकतांत्रिक मूल्यों और संवैधानिक आदर्शों के अनुरूप है। लेखक यह प्रतिपादित करते हैं कि समता कोई स्थिर अवस्था नहीं, बल्कि निरंतर संघर्ष और सामाजिक जागरूकता से प्राप्त होने वाली प्रक्रिया है।[16]

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में समता की अवधारणा सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा, आत्मसम्मान और लोकतांत्रिक मूल्यों से गहराई से जुड़ी हुई है। उनके कथा–पात्र असमानता और भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष करते हुए समतामूलक समाज की स्थापना का स्वप्न देखते हैं। इस प्रकार सांभरिया का साहित्य दलित चेतना के माध्यम से भारतीय समाज में समानता की आवश्यकता, उसकी चुनौतियों तथा संभावनाओं का सशक्त और प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत करता है।

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में बंधुत्व और न्याय की अवधारणाएँ दलित चेतना के मूलभूत आधारों के रूप में उभरकर सामने आती हैं। उनके साहित्य में बंधुत्व केवल भावनात्मक संबंधों का पर्याय नहीं है, बल्कि सामाजिक समरसता, पारस्परिक सम्मान, मानवीय गरिमा तथा लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का आधार है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्रता, समानता और न्याय के साथ बंधुत्व को भी एक मूल संवैधानिक

मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को परस्पर पूरक माना था। सांभरिया का कथा–साहित्य इसी अम्बेडकरवादी चिंतन को सामाजिक यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करता है। उनके पात्र जातिगत विभाजन, सामाजिक बहिष्कार और आर्थिक विषमताओं से संघर्ष करते हुए मानवीय संबंधों की पुनर्स्थापना तथा न्यायपूर्ण समाज की आकांक्षा व्यक्त करते हैं।[17]

रत्नकुमार सांभरिया की प्रसिद्ध कहानी 'फुलवा' में बंधुत्व की भावना सामाजिक परिवर्तन के साथ जुड़कर सामने आती है। फुलवा अपने पुत्र राधामोहन को शिक्षित कर सामाजिक सम्मान दिलाने का प्रयास करती है। जब राधामोहन उच्च प्रशासनिक पद प्राप्त कर लेता है, तब समाज के वे लोग भी उसके परिवार को सम्मान देने लगते हैं जो पहले जातिगत आधार पर उन्हें तिरस्कृत करते थे। यह परिवर्तन केवल सामाजिक प्रतिष्ठा का नहीं, बल्कि पारस्परिक स्वीकृति और मानवीय संबंधों के पुनर्गठन का संकेत है। कहानी यह स्पष्ट करती है कि बंधुत्व की स्थापना तब संभव होती है जब समाज व्यक्ति को उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसकी योग्यता और मानवीय गुणों के आधार पर स्वीकार करे।[18]

'एयरगन का घोड़ा' कहानी में न्याय का प्रश्न सामाजिक असमानता और जातिगत उत्पीड़न के संदर्भ में प्रस्तुत हुआ है। भूरजी राम मानू बचपन में सामंती और जातिवादी व्यवस्था का शिकार बनता है, किंतु शिक्षा प्राप्त कर जेल अधीक्षक बनने के बाद वह सामाजिक न्याय और समानता का प्रतीक बन जाता है। कहानी यह संदेश देती है कि न्याय केवल न्यायालयों या कानूनों तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान और अवसर प्रदान करने की प्रक्रिया भी है। सांभरिया यहाँ यह संकेत करते हैं कि सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए शिक्षा, आत्मसम्मान और संवैधानिक चेतना आवश्यक हैं।[19]

'बिपर सुंदर एक कीने' कहानी में बंधुत्व और न्याय दोनों का सशक्त चित्रण मिलता है। श्यामूलाल सामाजिक बहिष्कार और जातिगत पूर्वाग्रहों का सामना करते हुए अपने पुत्र दीदार की शिक्षा जारी रखता है। जब दीदार प्रशासनिक सेवा में चयनित होता है, तब वही समाज उसके परिवार से संबंध स्थापित करने के लिए उत्सुक दिखाई देता है। यह स्थिति सामाजिक न्याय की दिशा में परिवर्तन का संकेत देती है। साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि सामाजिक संबंधों में समानता और सम्मान का भाव विकसित होने पर बंधुत्व की भावना मजबूत होती है। कहानी में जातिगत दूरी के स्थान पर मानवीय निकटता का विकास सामाजिक लोकतंत्र की अवधारणा को मूर्त रूप प्रदान करता है।[20]

रत्नकुमार सांभरिया की 'धूल' कहानी में न्याय का स्वरूप अवसरों की समानता के रूप में सामने आता है। हुलसीराम अपने छोटे भाई धूलसिंह को शिक्षित करने के लिए अनेक त्याग करता है। सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद धूलसिंह भारतीय प्रशासनिक सेवा में स्थान प्राप्त करता है। यह सफलता इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि यदि समाज में समान अवसर उपलब्ध कराए जाएँ तो वंचित वर्ग भी प्रगति के उच्चतम स्तर तक पहुँच सकता है। कहानी न्याय को केवल दंडात्मक अवधारणा न मानकर अवसरों की समान उपलब्धता और मानवीय गरिमा की स्थापना के रूप में परिभाषित करती है।[21]

'बात' कहानी में बंधुत्व और न्याय का संबंध दलित स्त्री जीवन के संदर्भ में उभरता है। सूरती अपने पुत्र राधू की शिक्षा के लिए संघर्ष करती है और विपरीत परिस्थितियों में भी आशा का दामन नहीं छोड़ती। उसका संघर्ष यह दर्शाता है कि सामाजिक न्याय का वास्तविक अर्थ समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को समान अवसर प्रदान करना है। सांभरिया दलित स्त्री के अनुभवों को केंद्र में रखकर न्याय की अवधारणा को व्यापक बनाते हैं, जहाँ जाति और लिंग दोनों स्तरों पर होने वाले अन्याय को चुनौती दी जाती है।[22]

सांभरिया के कथा–साहित्य में बंधुत्व का एक महत्वपूर्ण आयाम सांस्कृतिक स्वीकृति और सामाजिक समावेशन भी है। उनके पात्र केवल अपने अधिकारों की माँग नहीं करते, बल्कि समाज में पारस्परिक सम्मान और सह–अस्तित्व की भावना विकसित करने का प्रयास भी करते हैं। लेखक यह स्थापित करते हैं कि बंधुत्व के बिना न्याय अधूरा है और न्याय के बिना बंधुत्व केवल औपचारिकता बनकर रह जाता है। इसलिए दोनों अवधारणाएँ एक–दूसरे की पूरक हैं। यह दृष्टि भारतीय संविधान की मूल भावना तथा अम्बेडकरवादी चिंतन से गहराई से जुड़ी हुई है।[23]

रत्नकुमार सांभरिया का साहित्य यह भी स्पष्ट करता है कि न्याय केवल कानूनी अधिकारों की प्राप्ति नहीं है, बल्कि सामाजिक व्यवहार में समानता और सम्मान की स्थापना भी है। उनके पात्र सामाजिक भेदभाव, आर्थिक विषमता और सांस्कृतिक बहिष्कार के विरुद्ध संघर्ष करते हुए एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, सम्मान और गरिमा प्राप्त हो।[24] इस प्रकार उनका साहित्य सामाजिक न्याय को मानवीय मूल्यों के साथ जोड़कर देखता है।

निष्कर्षः

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में बंधुत्व और न्याय की अवधारणाएँ दलित चेतना के महत्वपूर्ण आधार हैं। उनके कथा–पात्र सामाजिक अन्याय और असमानता के विरुद्ध संघर्ष करते हुए मानवीय संबंधों, सामाजिक समरसता और लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास करते हैं। इस प्रकार सांभरिया का साहित्य यह प्रतिपादित करता है कि स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और न्याय के समन्वित विकास के बिना किसी भी समाज में वास्तविक लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की स्थापना संभव नहीं है।

संदर्भ –

[1] अम्बेडकर, भीमराव रामजी. Annihilation of Caste. नई दिल्लीः क्रिटिकल क्वेस्ट, 2014, पृ. 52–58.
[2] सांभरिया, रत्नकुमार. फुलवा एवं अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2010, पृ. 42–50.
[3] सांभरिया, रत्नकुमार. एयरगन का घोड़ा. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 56–66.
[4] सांभरिया, रत्नकुमार. बिपर सुंदर एक कीने. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2014, पृ. 71–84.
[5] सांभरिया, रत्नकुमार. धूल तथा अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2011, पृ. 33–42.
[6] सांभरिया, रत्नकुमार. बात. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 88–95.
[7] भारत सरकार. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009. नई दिल्लीः विधि एवं न्याय मंत्रालय, 2009, पृ. 12–18.
[8] भारत का संविधान. नई दिल्लीः भारत सरकार प्रकाशन विभाग, 2024, अनुच्छेद 14, 15, 21, पृ. 18–25.
[9] अम्बेडकर, भीमराव रामजी. Annihilation of Caste. नई दिल्लीः क्रिटिकल क्वेस्ट, 2014, पृ. 52–60.
[10] सांभरिया, रत्नकुमार. फुलवा एवं अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2010, पृ. 42–50.
[11] सांभरिया, रत्नकुमार. एयरगन का घोड़ा. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 56–67.
[12] सांभरिया, रत्नकुमार. बिपर सुंदर एक कीने. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2014, पृ. 71–85.
[13] सांभरिया, रत्नकुमार. धूल तथा अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2011, पृ. 33–42.
[14] सांभरिया, रत्नकुमार. बात. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 88–96.
[15] भारत का संविधान. नई दिल्लीः भारत सरकार प्रकाशन विभाग, 2024, अनुच्छेद 14, 15, 17, पृ. 18–26.
[16] अम्बेडकर, भीमराव रामजी. संपूर्ण वाङ्मय, खंड–17. नई दिल्लीः सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, 2014, पृ. 145–152.
[17] अम्बेडकर, भीमराव रामजी. Annihilation of Caste. नई दिल्लीः क्रिटिकल क्वेस्ट, 2014, पृ. 60–68.
[18] सांभरिया, रत्नकुमार. फुलवा एवं अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2010, पृ. 42–50.
[19] सांभरिया, रत्नकुमार. एयरगन का घोड़ा. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 56–67.
[20] सांभरिया, रत्नकुमार. बिपर सुंदर एक कीने. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2014, पृ. 71–85.
[21] सांभरिया, रत्नकुमार. धूल तथा अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2011, पृ. 33–42.
[22] सांभरिया, रत्नकुमार. बात. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 88–96.
[23] भारत का संविधान. नई दिल्लीः भारत सरकार प्रकाशन विभाग, 2024, प्रस्तावना तथा अनुच्छेद 14, 17, पृ. 1–26.

[24] अम्बेडकर, भीमराव रामजी. संपूर्ण वाङ्मय, खंड–17. नई दिल्लीः सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, 2014, पृ. 152–160.